किसी भी शिष्य के जीवन की धन्यता होती है, जब वह अध्यात्म की ओर उन्मुख होता है और अध्यात्म की सम्पूर्णता तब होती है, जब शिष्य सिद्धाश्रम के चिंतन को अपने जीवन में स्थान देता है। जीवन में सिद्धाश्रम के विषय में चिंतन प्रारंभ होने का अर्थ ही है, कि अब शिष्य में नयी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है, अब वह शिष्य सामान्य कोटि का जीव मात्र ही नहीं रह गया है, अब वह हंस की श्रेणी में आने योग्य हो गया है, जिसने अपने पंखों को पसार दिया है . . .

– सिद्धाश्रम जयंती (21.06.14) के अवसर पर प्रस्तुत है, सिद्धाश्रम की चेतना को स्पर्श करता एक दुर्लभ साधना विवरण

जीवन में कुछ पल ऐसे भी होते हैं, जब चित्त स्वत: ही समस्त राग-द्वेषों से मुक्त होता हुआ, किसी शून्य में लीन हो जाता है।

वासनाओं के उद्वेग भूली-बसरी बात हो जाती है, चित्त में चल रहा अनेक कामनाओं का कोलाहन शांत हो जाता है, मोह-ममता से अपने आपको मुक्त करने का कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है।

तथा विगत जीवन के पीड़ादायक क्षण यूं विस्मृत हो जाते हैं मानो उनका कभी अस्तित्व ही न रहा हो।

लेकिन बस वे पीड़ादायक क्षण ही क्यों? ऐसे में तो समस्त चेतना, समस्त अस्मिता ही किसी शून्य से सम्पृक्त

सिद्धाश्रम केवल एक प्राकृतिक सौन्दर्य से भरी स्थली ही नहीं, देवांगनाओं की क्रीड़ास्थली भर भी नहीं, यहां तक कि केवल तपोभूमि भी नहीं . . .

सिद्धाश्रम तो स्वयं में जीवन की एक स्थिति है, जो प्राप्त कर सकता है कोई भी साधक, इसी भू-भाग पर रहते हुए, सामान्य गृहस्थ के आवरण में, जीवन को बिना छोड़े हुए।

हो, ऐसे अद्भुत अनिवर्चनीय प्रकाश के साथ नृत्य करने लग जाती है।

जैसे प्रात: की स्वर्णिम रश्मियों का मधुरिम प्रकाश, किसी घने वृक्ष के झुरमुट से बार-बार आकर नर्तन सा करता झलक जा रहा हो।

. . .और झलक कर पता नहीं, किस इंगित को देने के लिए आतुर हुआ जा रहा हो।

कभी तो सहसा कुछ स्वर्णिम राशि सी बिखेर देती हैं वे कोमल किरणें!

तो कभी वे ही कुछ शीतल बन रूपहली सी आभा छलका कर कहने लग जाती है, किसी अनदेखी स्निग्धता के विषय में।

यही होती है शायद प्राणों की वह दशा, जहां से जीवन में कुछ और घटित होने लग जाता है।
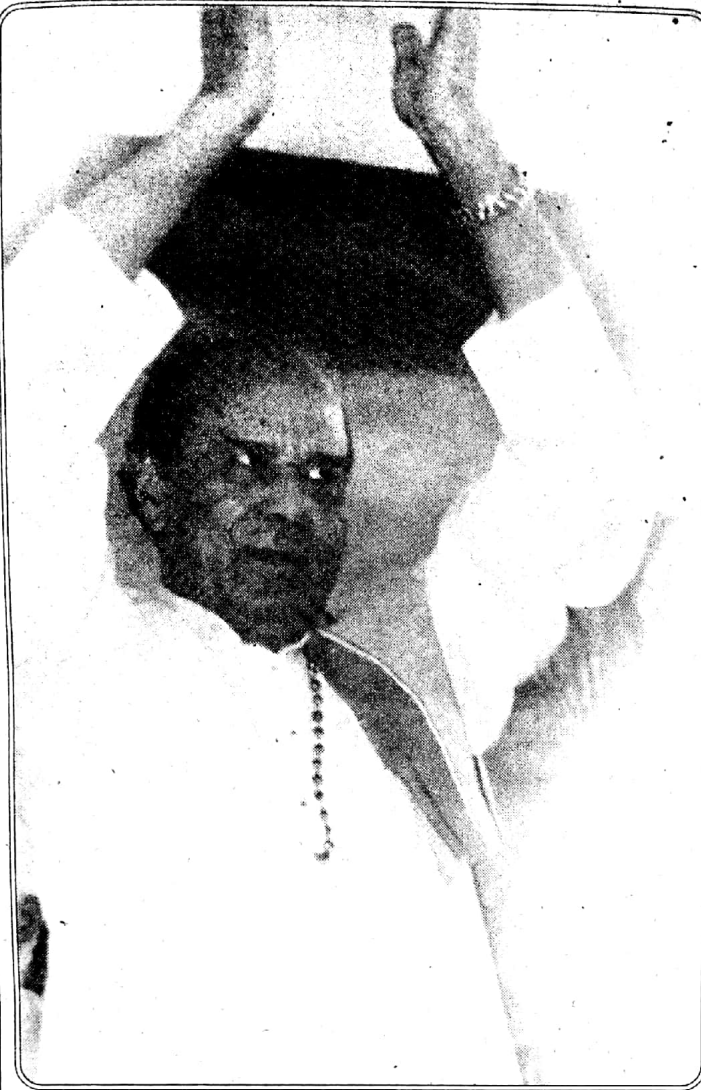
- बुलाने लग जाते हैं ऐसे क्षण, अपनी ओर कोई गूढ़ सा संकेत देकर वहां चलने के लिए, जहां इस जगत के वैषम्य से मुक्ति संभव है।

जहां पल-पल अपने आपको दबोच कर जीवन जीने की विवशता नहीं है, जहां कृत्रिम संबंधों के साथ औपचारिकता के आवरण में रहने की बाध्यता नहीं है।

. . और न जहां पल प्रतिपल किसी आघात की आशंका है - न प्राणों पर, न चेतना पर, न स्मित पर, न जीवन के नृत्यमय आह्लाद पर।

लेकिन क्या संज्ञा दे सकते हैं, इन प्राणों की दशा की? प्राणगत होते हुए भी, कितनी पृथक होती है यह दशा प्राणों के उस दु:सह्य आवरण से।

उस बोझ से, जो मथ कर रख देता है चित्त को, जब कभी बोध हो जाए वास्तविकता का।

बोध हो जाए इस बात का, है सब कुछ अंततोगत्वा प्रलाप ही और इन प्रलापों के लिए इतनी अधिक वेदना?

इन्हें अर्जित करने के लिए इतनी व्यर्थ की भागदौड़? क्या अर्थ रह जाएगा फिर जीवन का, यदि वहां तक न पहुंच सके जहां सब कुछ नित्य है? केवल नित्य ही नहीं प्रतिपल नूतन भी तो!

यही प्रतिपल नूतन होना ही, तो सिद्धाश्रम का वास्तविक परिचय है। जहां काल अपने क्रूर पंजों को फैला नहीं सकता, जहां मृत्यु उपस्थित हो ही नहीं सकती, जहां क्षययुक्त कुछ है ही नहीं, वस्तुत: वहीं तो नूतनता भी उन्मुक्त हो अपना नृत्य प्रस्तुत कर सकती है।

अन्यथा इस जगत में तो नूतनता यदि दैववश उपस्थित हो भी जाए, तो विषमताओं के ताप में छटपटा कर क्षणांश में अपना अस्तित्व त्याग, जीवन की एक बोझिलता बन जाती है, और यही कारण बन जाता है मन के सारे असंतोष का, कटुताओं व प्राणहीनता का।

जिस जीवन में कोई नूतनता न हो, वह जीवन स्पन्दित हो सकता है तो कैसे? वह तो एक दिनचर्या से अधिक कुछ रह ही नहीं जाता है।

इसी कारणवश सिद्धाश्रम की धारणा केवल अब एक तप: स्थली के रूप में स्वीकार करना अपर्याप्त होगा, और अपर्याप्त ही होगा यह धारणा निर्मित कर लेना, कि सिद्धाश्रम का साक्षात्कार सीधे साधनाओं के माध्यम से हो जाना संभव है।

वस्तुत: एक सिद्धाश्रम पहले साधक के हृदय में

आकर उतर जाता है और उसकी उपस्थिति में, उसकी उपस्थिति के प्रकाश में ही आगे का मार्ग स्वतः प्रशस्त होने लग जाता है। एक तपोभूमि होते हुए भी सिद्धाश्रम, तो प्रारंभिक चरणों में भावगत व प्राणगत स्थिति ही है।

यदि हृदय में वह भावभूमि ही नहीं निर्मित हो सकी, कि जिसके आधार पर यह जाना जा सके कि सिद्धाश्रम का परिचय क्या है तो आगे कहां तक की यात्रा के लिए मन में कोई आग्रह निर्मित हो सकेगा?

केवल अध्यात्म के क्षेत्र में ही नहीं इस दैनिक जीवन में भी, जिससे परिचय ही न हो, क्या उसके प्रति मन में कोई आग्रह उमड़ सकता है?

इसी मूलभूत तथ्य को ध्यान में रखकर इस वर्ष दिनांक 21.06.2014 को सिद्धाश्रम जयंती के अवसर पर सिद्धाश्रम प्राप्ति से संबंधित एक विशिष्ट साधना प्रस्तुत की जा रही है, जिसे साधना से अधिक 'परिचय' कहना ही अधिक उचित रहेगा।

वस्तुतः सिद्धाश्रम के विषय में कोई सम्पूर्ण साधना क्रम प्रस्तुत कर पाना, गुरु परम्परा में गोपनीय होने के कारण अत्यंत दुष्कर ही रहा है। जिसके पीछे कारण मात्र इतना ही है, कि ऐसा विशिष्ट ज्ञान हल्के और ओछे व्यक्तियों के समीप जाकर अपनी अर्थवत्ता न खो दे, उपहास के विषय वस्तु न बनने लग जाए।

इसके उपरान्त भी गुरु के चिंतन मर्यादाबद्ध तो हो सकते हैं, किसी परिसीमा में आबद्ध नहीं और संभवतः यही कारण था कि सिद्धाश्रम जयंती के अवसर पर पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा कृपापूर्वक यह साधना रहस्य प्रदान किया गया था जिसे यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रयोग विधि

इस प्रकार की उच्चकोटि की साधना में प्रविष्ट होने वाले साधक के पास ताम्रपत्र पर अंकित सिद्धाश्रम मंत्रों से संस्पर्शित **गुरु यंत्र** एवं **सिद्धप्रदा माला** आवश्यक उपकरण के रूप में होनी अनिवार्य होती है, जिसका पहले किसी साधना में प्रयोग न किया गया हो।

उपरोक्त दिवस पर इन्हें लकड़ी के बाजोट पर सफेद वस्त्र बिछा कर, सम्मानपूर्वक स्थापित करें एवं स्वयं भी सफेद धोती को पहन, गुरु पीताम्बर ओढ़ कर सफेद रंग के सूती आसन पर बैठें। इस साधना को प्रातः 5 से 6 बजे के मध्य अथवा रात्रि में दस बजे के पश्चात सम्पन्न करना चाहिए।

यंत्र व माला का दैनिक साधना विधि पुस्तक के अनुसार पूजन करने के पश्चात् गुरु मंत्र की पांच माला मंत्र जप करके निम्न मंत्र की ग्यारह माला जप सम्पन्न करें -

सिद्धाश्रम चेतना मंत्र

|| ॐ ह्रीं सिद्धाश्रमं भं सं मं पं सं क्षं ॐ नमः ||

OM HREEM SIDDHAASHRAMAM BHAM SAM MAM PAM SAM KSHAM OM NAMAH

साधना के पश्चात् अगले दिन यंत्र व माला को विसर्जित कर दें।

यह साधना सम्पन्न करने पर साधक ध्यान में, विशिष्ट अनुभव प्राप्त होने लगते हैं और साधक चाहे तो गुरुदेव से सिद्धाश्रम प्रवेश दीक्षा भी प्राप्त कर सकता है।

न्यौछावर - 450/-

तप में प्रमाद न करें

तप से प्रजापति ने इस सृष्टि का सृजन किया। सूर्य तपा और संसार को कुछ देने में समर्थ हुआ। तप के बल से भगवान शेष पृथ्वी का भार उठाते हैं। शक्ति और वैभव का उदय तप से ही होता है।

तपाने पर धातुओं से श्रेष्ठ उपकरण बनते हैं सोने के आभूषण बनते हैं। बहुमूल्य आयुर्वेदिक भस्में तपाये जाने पर ही अमृतोपम गुण दिखाती हैं।

तपस्वी बलवान बनता है विद्वान और मेधावी बनता है। ओजस, तेजस और वर्चस प्राप्त करने के लिए तपश्चर्या का अवलम्बन लेना पड़ता है।

बिलासी, आलसी, चापलूस और कायर मरते है, प्रतिभा भी गवां बैठते हैं।

उन्हें लक्ष्मी भी छोड़कर चली जाती है वे पराधीन एवं दीन दुर्बल के समान जीते हैं।

अस्तु तपस्वी होना चाहिए तप में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

जप-तप साधक के अस्त्र है उनके बिना कुछ भी संभव नहीं इससे ही शरीर शुद्धि होती है और लक्ष्य की प्राप्ति भी।